उत्तराखण्ड के भोटान्तिको की आस्थाएं एवं लोक परम्पराएँ

दीपक कुमार
बी.एस.एम. (पी.जी.) रूड़की

उत्तराखण्ड के पर्वतीय प्रदेश में सदियों से बसे होनें के कारण भोटिया जनजाति में यहाँ के विषम भौगोलिक वातावरण से आत्मसात करने के लिए प्रकृति पूजा या प्रकृति की रहस्यमयी शक्तियों की उपासना के भाव जागृत हुए। विशाल हिमखण्डों के मध्य निर्जन, संकीर्ण घाटियों एवं नदियों के आस–पास रहकर इन शक्तियों की पूजा अर्चना करने की आस्था मन में उत्पन्न हुई।

डॉ. शिवप्रसाद डबराल के अनुसार भोटिया समाज भाग्यवादी अंधविश्वासी, अनेक देवी–देवताओं, भूत–प्रेतों और अंछरियों में विश्वास रखने वाला व उनसे भयभीत रहता है। ये लोग देवी–देवताओं, भूत–प्रेतों, पर्वत–शिखरों (कैलाश, द्रोणागिरी व हाथी पर्वत एवं नन्दा देवी शिखर) की उपासना करते हैं। हिमाच्छादित पर्वत शिखरों से, जोखिम एवं विकट मार्गों या गहरी खाइयों से गिरकर अकाल मृत्यु का भय सताता रहता है। अतः आत्मिक बल प्रदान के लिए प्रकृति की अदृश्य शक्तियों के भय को दूर करने के लिए उनकी उपासना जागृत हुई। सहस्त्रों वर्षों तक तिब्बत के साथ व्यापार सम्बन्ध होने से तिब्बती मूल के देवी–देवताओं के प्रति भी आस्था का उद्‌भव हुआ। उत्तरकाशी के जाड़ भोटियों में हिन्दू एवं तिब्बती बौद्ध धर्म की आस्थाएं आज भी देखने को मिलती हैं। हिन्दूओं के देवी–देवता नागराजा, दुर्गा भगवती, नन्दा के अलावा बौद्ध धर्म की मान्यताओं के अनुरूप वहाँ पर स्थित बौद्ध मठ (मन्दिर) मे जाकर परिक्रमा करते हैं और मणि चर्खी घुमाते हैं। तोल्छा–मारछा व शौका भोटान्तिकों की तरह वे भी प्रकृति की रहस्यमयी शक्तियों की उपासना करते हैं। इनमें पितृ–पूजा का भाव देखने को मिलता है। वे अपने पित्रों के छवि चित्र व प्रतिमाओं की पूजा करते हैं। मृत आत्माओं को खुश करने के लिए वर्ष में दूसरे–तीसरे वर्ष (सालाना, दुसाली व तिसाली) 'स्यिमी' (मृत आत्माओं के लिए पूजन) संस्कार में बकरे की बलि एवं श्रीफल को भी फोड़ा जाता है। इस अवसर पर सभी विवाहित लड़की अपने गांव 'मायके' आकर पितृ–पूजा में मदिरा, अक्षत, दोफारी (भुने चावल) चढ़ाकर उन्हें शान्त करती हैं। ससुराल जाते समय ''ठुमो'' मृत आत्माओं की पूजा करके अपने परिवार की कुशलकामना एवं सन्तान प्राप्ति का फल प्राप्त करते हैं। यह समाज रूढ़िवादी व अंधविश्वासी होने के कारण अनेक देवी देवताओं को अपना ईष्टदेव मानकर उनकी पूजा करता है। इनके ईष्टदेवता, थाप्पुड़, मदन, स्यासै, कांगरू व नन्दा देवी व नमचुड़ आदि हैं। दारमा घाटी के लोग 'पंचजूली शिखरों' को 'मिथुला देवी' का निवास बताकर पूजा करते है।[11] जाड़ भोटिया यक्षों, गंधर्वों, तोल्छा एवं मारछा पंचपावा व नागपूजा, जौहार व दारमा के भोटान्तिक सिदुवा, विदुवा की पूजा करते हैं। क्योंकि इनका अधिकांश जीवन चारागाहों में अपनी भेड़ बकरियों के साथ व्यतीत होता है। अपने पशुधन की रक्षा की कामना से इन देवी–देवताओं की पूजा की जाती है। नीति–माणा घाटी के भोटिया हरियाली देवी, प्रकृति देवी, पंछी देवी, घण्टाकर्ण, फैला पंचनाग, धर्मदाणी, नन्दा व शिव के प्रति आस्था रखते हैं। घण्टाकर्ण (घनियाल देवता) की पूजा विशेष रूप से होती है। घण्टाकर्ण, मन्दिर के समीप ऊँचे–ऊँचे खम्बों पर घंटियाँ (घंटियां) लटकायी जाती हैं। मान्यता है कि इन घंटियों की ध्वनि जहां तक पहुँचती है, उस स्थान तक आपत्ति–विपत्ति प्रवेश नहीं कर सकती। गमसाली में बम्पानाग देवता को महामारी एवं आधि–व्याधि निवारक माना जाता है। बसंत ऋतु के आगमन पर धन व व्यापार उन्नति का द्योतक 'धवला देवता' के सैंथान में (स्थान पर) नये वस्त्र व अपने घरों की लिपाई पुताई करके प्रातः सूर्योदय के समय झंडा (दाजा) लेकर जाते हैं। इस अवसर पर तांबें के बर्तनों को बजाकर बसन्त के आगमन का बड़ी आस्था एंव विश्वास के साथ स्वागत करते हैं। शाम को धवला देवता के नाम की 'भेली' मांगकर धवला देवता की पूजा की जाती है। ईष्ट देवताओं के पूजन के लिए पुरोहित को बुलाकर देवता के 'सैंथान' में 'ठूमो' (पूजन) के लिए धल, श्रीफल, पुष्प, नैरबैर की पत्तियों की धूप, दाजा हेतु सफेद वस्त्र, सत्तू , बकरा व देवता के भोग के लिए 'मरकुटु' (मर–घी, कुटु–आटा) हलवा, आदि ले जाकर चढ़ाया जाता है। ढोल–नगाड़ा बजाकर देवताओं को खुश करने की परम्परा आज भी

विद्यमान है। अंधविश्वास से घिरा समाज होने के कारण बिल्ली का रास्ता काटना, रास्ते में सांप दिखना, खाली बर्तन व किसी शुभ कार्य में जाते समय विधवा स्त्री का दिखना अशुभ माना जाता है। पानी का भरा बर्तन, दही की भरी लोटी आदि शुभ माना जाता है।

प्रेत आत्माओं तथा कुदृष्टि से बचने के लिए बकरे की बलि की विशिष्ट परम्परा रही है। प्रेत आत्माओं की पूजा में आज भी तंत्र–मंत्र का सहारा लिया जाता है। तंत्र के लिए प्रेत आत्मा से प्रभावित व्यक्ति को लाल पिंठाई या राख लगाकर, कनाली घास या गरूड़ पंख से झाड़ा दिया जाता है। यदि प्रेत आत्मा व्यक्ति के शरीर से बाहर नहीं जाती है तो फिर मुर्गे व बकरे की बलि देकर प्रेत आत्मा को संतुष्ट करने की मान्यता है। इस पूजा को ''च्याविमों (चुर्मो)'' कहते हैं। मुर्गे की बलि में मुर्गे की गरदन काटकर फेंक दी जाती है और शेष साबुत मुर्गे को चौराह में गाड़ दिया जाता है। भोटान्तिकों की मान्यता है कि इससे कुदृष्टि व भूतप्रेत का प्रभाव समाप्त हो जाता है।

शीतकाल में मैत से गुनसा में अपने घरों में आते समय रिंगाल से बनी टोकरी के अन्दर मंडुवे की अधपकी रोटी, दाल, चावल, पिंठाई मिलाकर लाल व पीले रंग के पुरखों को सजाकर बने 'सारा' को गांव की प्रत्येक दिशा में दूर रख देते हैं। मान्यता है कि ऐसा करने से प्रेत आत्माएँ गाँव में प्रवेश नहीं करती हैं। इन रूढ़िवादी परम्परा एवं अंधविश्वासी मान्यताओं को मानते हुए भोटिया समाज के उत्सव एवं पर्वों में इनकी झलक देखने को मिलती है।

उत्सव एवं त्यौहार

भोटिया कृषि उत्सव 'नबूसामों' फसलों को क्षति पहुँचाने वाले कीड़ों–मकोड़ों से बचाव के उद्देश्य से मनाया जाता है। 'नंबुसामों' उत्सव में गाँव के सभी व्यक्ति कृषि को नुकसान पहुँचाने वाले कीड़े–मकोंडों को पकड़कर भोजपत्र या कपड़े में लपेटकर बकरे की सींग पर बांध देते हैं। बकरे को खेतों की परिक्रमा कराकर दक्षिण दिशा में पड़ने वाले मार्ग के चौराह पर ले जाकर बलि दे देते हैं। बकरे के शीर्ष भाग को वहीं छोड़कर शेष धड़ वाले हिस्से को गाँव में लाकर सभी व्यक्तियों को परोसा जाता है। जिसे सभी गाँववासी एक साथ मिलकर खाते हैं। मान्यतानुसार बकरे की बलि देकर फसलों को क्षति पहुंचाने वाले कीड़े–मकोड़े खेतों में नहीं आते हैं। नंबूसामों जिसमें (नबू–कीड़े मकोड़े, सामो–मिट्टी में समा देना) कीड़े–मकोड़ों के नष्ट होनें की कामना की जाती है। इसके लिए छिपकली की आकृति का 'मिल्व' बनाकर उसे सार्वजनिक स्थान में रखा जाता है। जिसमें समस्त गाँववासी अपने–अपने घरों से मडुवा, सत्तू, फाफर आदि अनाज मिल्व के ऊपर डालते है और तलवार लेकर उसके चारों ओर नाचते हुए आदेश देते हैं कि ''हमारी फसलों को नष्ट करने वाली एवं हमारे ऊपर बुरी नजर डालने वाली अदृश्य शक्तियों गाँव की सीमा से दूर चले जाओ।'' तत्पश्चात उस आकृति ''मिल्व'' को लातों से उछाल–उछाल करके दूर दक्षिण दिशा में फेंक देते हैं। खुशियाँ मनाते हुए गाँव के मुखिया (ग्राम प्रधान) को कन्धों में नचाकर उसके घर तक ले जाते हैं। तब गाँव के मुखिया द्वारा सामुहिक भोजन का आयोजन किया जाता है।

व्यास पट्टी के भोटान्तिक प्रत्येक वर्ष भाद्रपद की पूर्णिमा के अवसर पर महर्षि व्यास की पूजा करते हैं। गुन्जी गांव में 'मनीला के मैंदान' में मेले का आयोजन होता है। व्यास पूजा के दिन मांस–मदिरा का सेवन वर्जित होता है। चौंदास पट्टी के भोटिया समाज के लोग अक्टूबर से नवम्बर माह तक ''स्यंठ'' का उत्सव मनाते हैं। इस असवर पर प्रत्येक परिवार से ज्येष्ठ पुत्र को वयस्क के रूप में मान्यता दी जाती है। व्यास पट्टी के भोटिया 'बुढ़ानी'[12] संस्कार करते हैं। प्रत्येक परिवार के सदस्य को आमन्त्रित करके वे सभी मिलकर देवमन्दिर में पहुँचकर धंल अर्पित करते हुए देवता की आराधना करते हैं। तत्पश्चात एक दूसरे को प्रीतिभोज पर आमंत्रित किया जाता है। यह त्यौहार दो या तीन दिन तक चलता है। जिसमें सभी लोग मिलजुल कर एक साथ भोजन करते हैं। यह त्यौहार आपसी भाई चारे एवं शिष्ट व्यवहार का परिचायक है।

लेटुकमचा, वाड़ीदुड़्च्वा, ज्यादूकमंच्या

नीतीमाणा घाटी के भोटान्तिक चार माह का शीत कालीन प्रवास समाप्त करने पर गरम घाटियों को छोड़कर अपने मूल गाँवों में पड़ाव डालते हैं। तब लेटूकमचा, वाड़ीदुड़्च्वा व ज्यादूकमंच्या त्यौहार का आयोजन होता है।[13] इस त्यौहार में मारछा भोटान्तिक अपने पड़ाव में

पहुँचकर गेहूँ, मडुवा व फाफर के आटे से निर्मित मिश्रण से हलुआनुमा लेटु व कमचा (नमक मिर्च) बनाकर अमेश की खटाई के साथ लेटु (बाड़ी) में डालकर बड़े शौक से खाते हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से यह भोजन जुकाम, खांसी, भारीपन, गरिष्ठ आदि को दूर करता है। इस त्यौहार में अपने मूल गाँव में पड़ाव डालने पर मातृ–भूमि की पूजा धूप, दीप, पूरी तथा फाफर के आटे से निर्मित मीठे पकवान से किया करते हैं। आपस में एक दूसरे को लोटु–कमचा भोजन बांटते हैं। यह त्यौहार मई माह के अन्तिम सप्ताह व जून माह के प्रथम सप्ताह के मध्य मूल गाँवों में जाकर मनाया जाता है।

लोसर

उत्तरकाशी के डुण्डा गाँव में निवास करने वाले जाड़ भोटिया जनजाति की लोक मान्यताओं एवं परम्पराओं में तिब्बती प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। बौद्ध धर्म की परम्पराओं से जुड़ा समाज होनें के कारण इनके द्वारा मनाये जाने वाला त्यौहार 'लोसर' (लो–नया, सर–वर्ष का त्यौहार) नववर्ष के आगमन के रूप में डुण्डा में रहने वाले जाड़, किन्नौरी व खम्पाओं (तिब्बतीयों) द्वारा फरवरी के प्रथम सप्ताह में आयोजित किया जाता है। यह जनजाति घुमन्तु एवं व्यापारिक जनजाति होनें से बीच में समय न मिलने के कारण पूर्व में नव वर्ष के त्यौहार 'लोसर' को दीपावली, दशहरा व होली का सामुहिक रूप से वर्ष में एक बार में ही सम्पन्न करते थे। आज भी उसी परम्परा को बनाए रखते हुए लोसर त्यौहार को तीन दिन तक मनाया जाता है। प्रथम दिवस की पूर्व संध्या पर प्रत्येक घर में परिवार के सदस्यों की संख्या के अनुसार गेहूँ एवं जौ के भूनें आटे की गोलियों के अन्दर पुराने वस्त्र के टुकड़े भर कर रखते हैं। इन गोलियों को अपने सिर, हाथ, पैर पर स्पर्श करते हुए यह कामना की जाती है कि पुराने वर्ष की समाप्ति होते ही हमारे शरीर के सभी दुःख–दर्द समाप्त हो जायें। तत्पश्चात आटे की इन गोलियों को एक पुराने बर्तन में रखकर साँय सात–आठ बजे ढोल–दमाऊ की थाप के साथ गाँव के सभी पुरूष अपने हाथों में चीड़ की मशाल दहली ''होतो'' हाथों में लेकर गाँव से बाहर एक स्थान में भस्म कर देते हैं। जाड़ भोटान्तिकों की मान्यता है कि इन गोलियों के भस्म होते ही दुख–दरिद्रता भी भस्म हो जाती है। आपस में खुश होकर नाचते हुए एक स्थान से छोटे–छोटे पत्थर के टुकड़ों को घर ले जाकर अपने प्रियमित्रों को सोना–चांदी के प्रतीक के रूप में पत्थर भेंट करते है। ऐसा प्रतीत होता है कि जब तिब्बत व्यापार के समय भोटिया (जाड़) अपने प्रिय मित्रजनों को उपहार स्वरूप भेंट में सोना–चांदी के टुकड़ों को भेंट करने की परम्परा रही होगी।

दूसरे दिन दशहरे के रूप में मनाया जाता है। आटे का डंग्या (गणेश) बनाकर पूरी, चावल, हरियाली, आटा व छंग (बियर) हरियाली देवता की पूजा की जाती है। इस शुभ अवसर पर विवाहित कन्याओं को आमंत्रित करके उन्हें दक्षिणा देकर विदा करते हैं।

अन्तिम दिवस लुगता (झण्डा) फहराया जाता है। सूर्योदय होते ही सफेद, हरे, पीले, लाल व नीले रंग के कपड़े के टुकड़ों को पंचतत्व आकाश, वायु, पृथ्वी, जल व अग्नि का द्योतक मानकर बाँस के लम्बे डण्डे में सजाकर अपने घरों की छत पर फहरा देते हैं। खेतों, जंगलों व वृक्षों की टहनियों में लाल, नीले, पीले व हरे रंग के कपड़े के टुकड़ों को बांधा जाता है। नदी के किनारे भी ग्रीष्मकाल के समय में झण्डा फहराने की परम्परा है कि ''बहते हुए नदी के पानी की तरह हमारा जीवन भी निर्मल एवं गतिशील है।'' लुगता (झण्डा) पूजन किया जाता है। तत्पश्चात पूरे गांव में 'आटे की होली' सभी लोग मिलकर एक, दो, तीन ''किबूसोक'' का उच्चारण करते हुए एक दूसरे के ऊपर फेंकते है। 'किंबूसोक' का अर्थ है कि ''यह वर्ष हमारे लिए शुभ एवं खुशियाँ प्रदान करें।'' होलियारों का स्वागत प्रत्येक घर में पूड़ी, पकोड़ी व छंग, जान (शराब) के साथ किया जाता है। तत्पश्चात ईष्ट देवी 'रिंगाली देवी' की पूजा की जाती है। रिंगाली देवी का पश्वा नृत्य करता हुआ सभी गांव वालों को शुभकामनाएँ एवं आशीर्वाद देता है। लुगता फहराने से लेकर होली की खुशियाँ मनाने के बाद रिंगाली देवी की डोली को वापस मन्दिर में पूर्ण आदर सत्कार एवं आस्था के साथ यथा–स्थान पर रख दिया जाता है। पुनः दूसरे वर्ष फिर 'लोसर' नये वर्ष के शुभ आगमन की कामना की जाती है।